**ओ३म्**

**स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर**

**‘महर्षि दयानन्द, वेद प्रचार और देश को स्वतन्त्रता की प्राप्ति’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 15 अगस्त का दिन देश का स्वतन्त्रता दिवस है। सन् 1947 में इसी दिन भारत को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति व स्वतन्त्रता मिली थी। यद्यपि यह स्वतन्त्रता है परन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिये कि इस दिन से एक दिन पहले 14 अगस्त, 1947 को भारत का 1/3 से अधिक भाग हमसे अलग कर पाकिस्तान बना दिया गया था जिसका कारण हिन्दू व मुस्लिम दो अलग-अलग कौमों का होना था। 15 अगस्त, 1947 को जो स्वतन्त्रता हमें व हमारे वर्तमान देश भारत को मिली उसमें महर्षि दयानन्द और आर्य समाज का क्या योगदान था, इसकी संक्षिप्त चर्चा हम इस लेख में कर रहे हैं। इसके लिए हमें पराधीनता की पृष्ठ भूमि में जाना होगा। महर्षि दयानन्द का कहना व मानना है और यह प्रमाणिक भी है कि **सृष्टि के आरम्भ काल से महाभारत काल तक के लगभग 1 अरब 96 करोड 08 लाख 48 हजार वर्षों तक आर्यों का समस्त भूमण्डल पर एकमात्र चक्रवर्त्ती राज्य रहा है।** इसका अर्थ है कि आर्यावर्त्त के अतिरिक्त अन्य देशों में वहां उत्पन्न हुए मनुष्यों में जो राजा होते थे वह सभी भारत वा आर्यावर्त्त के अधीन होते थे और नियमानुसार भारत को कर आदि देते थे। इस कर के बदले में भारत उनकी शिक्षा व अन्य आवश्यकताओं में अपना योगदान देता था जैसा कि किसी परिवार में बड़ा धार्मिक वैदिक प्रवृत्ति का भाई अपने छोटे भाईयों व उनके परिवार के प्रति करता है। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री रामचन्द्र और महाभारत में युधिष्ठिर जी के उदाहरण हमारे सामने हैं। यह बताना भी प्रासंगिक है कि चक्रवर्तीराज्य का अर्थ किसी देश व राजा को गुलाम बनाना नहीं है अपितु इसका अर्थ केवल वहां वैदिक मान्यताओं के अनुसार धर्म का राज्य जिसमें सत्य, न्याय, निष्पक्षता, सबकी समृद्धि, सुख व कल्याण हो, ऐसी व्यवस्था के लिए सहयोग किया जाता था। इसका यह भी एक कारण था कि वहां कोई राजा निरंकुश होकर अपनी प्रजा व पड़ोसी राज्यों से शत्रुता और युद्ध आदि न करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिएयह चक्रवर्तीराज्य होता था। सभी देशों में वहां के मूल निवासी ही राज्य करते थे। भारत के चक्रवर्ती सम्राट की ओर से राज्य संचालन में उनको सहयोग दिया जाता था और उनसे कर लिया जाता था। निर्धन व निर्बल देशों की सहायता भी उस कर से प्राप्त राशि से अवश्य की जाती होगी, ऐसा अनुमान वेदों व वैदिक साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है।

महाभारत काल तक आर्यों का राज्य निष्कटंक चलता रहा। महाभारत काल में राज-परिवार में परस्पर मतभेद हुए जिसमें एक पक्ष धर्म पर था तो दूसरा अधर्म पर, अधर्म के पक्ष ने स्वार्थ, शक्ति व छल से काम लिया जिसका परिणाम उस समय का महायुद्ध हुआ जिसमें लाखों लोग मारे गये और जिसके परिणाम से जो अव्यवस्था उत्पन्न हुई वह नियंत्रित होने के स्थान पर बढ़ती गईं। यह हमारा सौभाग्य है कि महायुद्ध का प्रमाणिक दस्तावेज **‘महाभारत ग्रन्थ’** हमारे पास विद्यमान है। इस महायुद्ध के परिणामस्वरूप वैदिक ज्ञान का लोप हो गया और समाज में अज्ञान उत्पन्न हुआ व उस अज्ञान से अन्धविश्वास, कुरीतियां आदि पतनकारी परिस्थितियां उत्पन्न हो गईं। ऐसे समय में यज्ञ में पशुओं की हिंसा होने लगी तथा जन्मना जाति व्यवस्था आरम्भ हुई। ब्राह्मणों को वैदिक काल में सबसे अधिक सम्मान व अधिकार प्राप्त थे जिसका आधार उनके गुण, कर्म व स्वभाव होते थे। अब गुण-कर्म-स्वभाव पीछे हो गये और जन्म के आधार पर अज्ञानी जन्मना ब्राह्मणवर्गीय लोग उन ज्ञानी व निष्पक्ष ब्राह्मणों वाले अधिकारों का दुरूपयोग करने लगे जिससे क्षत्रिय, वैश्यों पर अन्याय व शोषण होने लगा और शूद्रों के प्रति तीनों ही वर्णों का पक्षपात, शोषण व अन्याय होने लगा। मध्यकाल में बौद्ध, जैन व अद्वैत मत अस्तित्व में आये परन्तु विशेष सुधार नहीं हुआ। समाज में मिथ्या विश्वास मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध, छुआछूत, ऊंच-नीच आदि प्रचलित हो गये। सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से ध्वस्त हो गई जिसका परिणाम कालान्तर में पराधीनता के रूप में हुआ। पहले हम यवनों वा मुस्लिमों के गुलाम हुए और बाद में अंग्रेजों के। यह भी तथ्य है कि भारत पूरी तरह से गुलाम कभी नहीं हुआ, कुछ शक्तिशाली राजा व रियासतें गुंलामी से बाहर रहीं और विरोधियों व शत्रुओं का मुकाबला करती रहीं और अपनी स्वतन्त्रता और स्वाभिमान को अक्षुण रखा। ऐसा होते-होते उन्नीसवीं सदी का पूर्वाद्ध आ गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत दासता के पंक में जकड़ा हुआ था। अंग्रेजों की सत्ता थी तथा देशवासियों पर अमानवीय अत्याचार होते थे। जो लोग पढ़ लिखकर अंग्रेजों की जी-हजूरी करते थे, वही समाज में सुखपूर्वक आत्मसम्मान खो कर जीवन व्यतीत करते थे। किसानों पर लगान अत्यधिक था। इसी प्रकार से देश भर में दरिद्रता का साम्राज्य था। देश में ऐसा कोई देशी राजा व पौराणिक धर्म के ठेकेदार नहीं थे जो देशवासियों का मार्गदर्शन करते और उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वाभिमान की रक्षा, सद्धर्म की शिक्षा व पालन तथा स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाते। ऐसा लगता है कि हमारे सभी लोग मानसिक रूप से परतन्त्रता को पूरी तरह से स्वीकार किये हुए थे। उनके रक्त व मन में स्वतन्त्रता व स्वाभिमान की भावना नहीं थी। ऐसे समय में 12 फरवरी, 1825 को गुजरात प्रान्त के राजकोट जनपद के टंकारा कस्बे वा ग्राम में एक औदीच्य ब्राह्मण श्री करषनजी तिवारी के यहां एक बालक का जन्म होता है जिसका नाम मूलशंकर रखा जाता है और उन्हें कुल परम्परा के अनुसार शैव मत में दीक्षित करने के लिए बचपन से ही संस्कार डाले जाते हैं। मूलशंकर की लगभग 14 वर्ष की आयु में शिवरात्रि आती है। पिता के कहने से वह शिवरात्रि का व्रत-उपवास करते हैं। रात्रि जागरण करते हुए मन्दिर में चूहों की घटना घटती है जो बालक मूलशंकर को सच्चे शिव की खोज की प्रेरणा देती है। कालान्तर में उनकी बहिन और चाचा की मृत्यु होने पर उन्हें मृत्यु से बचने के उपाय जानने की जिज्ञासा होती है। कोई समाधान नहीं मिलता। वैराग्य के अंकुर उदित होने के कारण माता-पिता उन्हें विवाह बन्धन में बांधने का निर्णय करते हैं। जब विवाह से बचने का मार्ग नहीं मिला और विवाह में कुछ ही दिन शेष थे तो युवक मूलशंकर गृहत्याग कर देते हैं। कुछ समय बाद वह **शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी** बन जाते हैं और कालान्तर में संन्यास लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम धारण करते हैं। **इस बीच स्वामीजी के आध्यात्मिक एवं सांसारिक सत्य रहस्यों की खोज के प्रयास जारी रहते हैं। वह देश भर में भ्रमण कर साधु संन्यासियों से सच्चे शिव व मृत्यु से बचने के उपाय पूछते रहते हैं। वह योग में प्रवीण हो जाते हैं, विविध प्रकार का आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त कर लेते हैं परन्तु उनके आध्यात्मिक सिद्धान्त व मान्यतायें निश्चित नहीं हो पाती।** **इसी बीच सन् 1857 का भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का समय आता है।** वह इस क्रान्ति में अपनी भूमिका के बारे में मौन रहे, किसी को कुछ नहीं बताया परन्तु उनके साहित्य में प्रस्तुत विचारों व उनकी भावी कार्य शैली से स्पष्ट अनुमान होता है कि वह इस आन्दोलन में खामोश, चुप या मौन नहीं रह सकते थे। उन्होंने किस प्रकार से स्वतन्त्रता आन्दोलन में क्या भूमिका निभाई, अंग्रेजों का राज्य होने के कारण, उनको मौन रहना पड़ा। यदि वह आजादी के बाद तक जीवित रहते तो सभी तथ्य सामने आ जाते। समाज का एक ज्ञानी युवा संन्यासी परतन्त्रता के विरूद्ध संघर्ष में मौन व निष्क्रिय नहीं हो सकता, ऐसा हमारा अनुमान व आंकलन है।

1857 की क्रान्ति व उसके बाद अंग्रेजों का उसे कुचलने का अभियान सन् 1860 में कुछ शिथिल होता है। इस अवसर पर 35 वर्षीय स्वामी दयानन्द कहीं से प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती से विद्यार्जन के लिए मथुरा पहुंचते हैं और उनके अन्तेवासी शिष्य बनकर लगभग 3 वर्ष तक अध्ययन कर वेद-विद्या निष्णात् बनते हैं। गुरू की आज्ञा, प्रेरणा तथा स्वयं भी इसी कार्य को उचित मानते हुए वह वेदोद्धार, सर्वांगीण सामाजिक क्रान्ति, अज्ञान-अन्धविश्वास-कुरीतियों का समूलोच्छेद करने का निर्णय करते हैं। **वेद प्रचार क्या है?** वेद प्रचार सत्य ज्ञान जो तृण से लेकर ईश्वर तक पदार्थों का है, उसका प्रचार-प्रसार करते हैं, और यही मानव कर्तव्य व धर्म भी है। वेद प्रचार को लोग धर्म प्रचार तक सीमित मानते हैं, यह उचित नहीं है। स्वामीजी ने एक क्रान्तिकारी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश लिखा है। उसमें वह ईश्वर के सच्चे स्वरूप व उसकी उपासना के निर्धारण व प्रचार के साथ सामाजिक उत्थान व सुधार को अधिक महत्व देते हैं। शिक्षा सब सुधारों का सुधार है, अतः इस पर भी व आरम्भिक समुल्लासों में विस्तार से प्रकाश डालते हैं। वेदों को वह मानव जाति की सबसे महत्वपूर्ण सम्पत्ति व निधि मानते हैं, इसलिये इसके अध्ययन-अध्यापन, रक्षा व प्रचार पर विशेष बल देते हैं। **वैदिक ज्ञान व शिक्षा ही वह साधन है जिससे बुद्धि का पूर्ण विकास होता है। जिसकी बुद्धि का पूर्ण विकास होगा वह न तो दास बन सकता है, बना रह सकता है और न किसी को दास बना सकता है।** **अतः महर्षि दयानन्द के वेद प्रचार आदि सभी कार्य देश में ज्ञान व विज्ञान का विकास व उन्नति कर अज्ञान, अन्धविश्वास, कुरीतियां, बाल विवाह, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध, सामाजिक असमानता-विषमता सहित परतन्त्रता को दूर करने वाले व स्वतन्त्रता को उत्पन्न करने वाले कार्य थे।** महर्षि दयानन्द ने 10 अप्रैल, 1875 को मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की थी। आर्यसमाजों में प्रत्येक रविवार को साप्ताहिक अधिवेशन व सत्संग होते थे जहां सन्ध्या-यज्ञ सहित भजन व धार्मिक प्रवचनों के साथ-साथ देश व समाज के सुधार पर विचार किया जाता था। समाज सुधार में सबसे बड़ी बाधा तो अज्ञान, धार्मिक अन्धविश्वास एवं सामाजिक कुरीतियां ही थी तथा इसके साथ परतन्त्रता भी एक कारण था। परतन्त्रता के हानिकारक परिणामों को भारत में यदि सबसे पहले किसी ने अनुभव किया तो वह महर्षि दयानन्द थे। स्वतन्त्रता के लाभ व परिणामों को अनुभव कर ही उन्होंने 1857 की क्रान्ति के बाद इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया की घोषणा का शब्दशः खण्ड किया था। इस घोषणा का खण्डन व प्रति-उत्तर महर्षि दयानन्द ने मौखिक नहीं अपितु लिखित रूप में दिया। सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने लिखा है कि **‘‘कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा, मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न-2 भाषा, पृथक पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इस के छूटे, परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।”** इन पंक्तियों में महर्षि दयानन्द स्वदेशीय राज्य को सर्वोपरि उत्तम राज्य की संज्ञा देने के साथ विदेशियों का कितना ही अच्छा राज्य हो, उसे वह पूर्ण सुखदायक होना किसी भी परिस्थिति में स्वीकार नहीं करते। **हम समझते हैं कि महर्षि दयानन्द जी के यह वाक्य स्वतन्त्रता आन्दोलन की नीव थे।** इसका कारण यह है कि महर्षि दयानन्द से पूर्व किसी अन्य मनुष्य या महापुरूष ने देश की आजादी के लिए इस प्रकार के स्वतन्त्रतापरक उच्च भावों, वाक्यों व शब्दों को कहीं नहीं लिखा। दसवें सम्मुल्लास में एक स्थान पर महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते (और परदेश में नहीं करते) **और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो बिना दारिद्रय और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। इस पंक्ति में महर्षि दयानंद स्वदेश में परदेशी लोगों के राज्य को देशवासियों के दारिद्रय व सभी दुखों का कारण बता रहे हैं।** यह एक प्रकार से स्वामी दयानंद की अंग्रेजों को देश छोड़नेख् अपने देश वापिस जाने की चुनौती वा चेतावनी है। इसी प्रकार से उन्होंने आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में भी लिखा है। यही विचार, भावना व वाक्य अनेक वर्षों बाद आजादी के आन्दोलन का आधार बने।

आजादी का आन्दोलन दो धाराओं में चला जिसमें एक गरम घारा थी व दूसरी को नरम या अंहिसा की धारा कह सकते हैं। **क्रान्ति की धारा के प्रणेता श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा थे तथा शान्ति धारा के प्रणेता महादेव गोविन्द रानाडे थे।** यह दोनों व्यक्ति महर्षि दयानन्द के साक्षात् शिष्य थे। यदि यह कहें कि इन दोनों ने देशभक्ति एवं स्वतन्त्रता का पाठ स्वामी दयानन्द जी से ही पढ़ा था तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। पं. श्यामजी कृष्ण वर्म्मा के शिष्यों में वीरसावरकर जी जैसे अद्वितीय देशभक्त व क्रान्तिकारी हुए जिन पर पूरे देश को नाज, गौरव व अभिमान है। इन्हीं से प्रेरणा पाकर अन्य क्रान्तिकारी संगठन अस्तित्व में आये। इसी प्रकार से महादेव गोविन्द रानाडे के शिष्य गोपालकृष्ण गोखले थे जिनके शिष्य महात्मा गांधी जी हुए। **इस प्रकार से आजादी की दोनों धाराओं के प्रणेता स्वामी दयानन्द जी ही निश्चित होते हैं।** **इस कारण आजादी मिलने का सर्वाधिक श्रेय यदि किसी को है तो वह आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को है।** यह उल्लेखनीय तथ्य है कि काग्रेस की स्थापना आर्य समाज की स्थापना के 10 वर्ष बाद सन् 1885 में हुई। उस समय तक देश भक्ति व देश की आजादी की गुपचुप चर्चायें आर्यसमाजों में व इसके अनुयायियों द्वारा एक दूसरे से मिलने पर हुआ करती थी। कांग्रेस की स्थापना करने वालों में श्री ए.ओ. ह्यूम आदि लोग अंग्रेजों के विरोधी नहीं अपितु एक प्रकार से समर्थक व सहयोगी भी थे। वह अंग्रेजों से प्रार्थना कर कुछ सुधार करना चाहते थे। आजादी उनमें से किसी का भी उद्देश्य व स्वप्न नहीं था। कांग्रेस ने भी पूर्ण स्वराज्य की मांग बहुत वर्षों बाद की। यह उल्लेखनीय है कि जब यह दोनों आन्दोलन चले तो अन्य कोई नेतृत्व न मिलने के कारण आर्यसमाज के लोगों ने इन दोनों ही नरम और गरम दलों का चुनाव किया। यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि आजादी के आन्दोलन में भाग लेने वालों में लगभग 80 प्रतिशत लोग आर्यसमाज के विचारों को मानने वाले व उससे प्रभावित थे।

देश में आजादी व देश के संचालन के विषय में यदि कहीं कोई साहित्य व लिखित विचार मिलते हैं तो वह वेदों व वैदिक साहित्य में ही प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक धर्म से इतर किसी भी मत की पुस्तक में इनका संकेत भी नहीं मिलता। वेदों के आधार पर आर्यसमाज के विद्वान पं. प्रियव्रत वेदवास्पति ने वेदों में राजनीति सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान पर तीन खण्डों में ग्रन्थ लिखा है। वेद किसी देश में राज्य सत्ता का संचालन स्वदेशीय राजाओं द्वारा ही किये जाने के पक्षधर हैं। अतः वेदों के यह विचार भी विदेशी दासता से मुक्ति व स्वदेशी शासन व्यवस्था की नियुक्ति के पक्षधर हैं। मनुस्मृति भी राजा के गुणों एवं राजव्यवस्था सहित युद्ध नीति पर विस्तार से प्रकाश डालती है। इसके अतिरिक्त सत्यार्थ प्रकाश, शुक्रनीति, महाभारत एवं रामायण से भी शासन व्यवस्था पर सर्वांगीण प्रकाश पड़ता है। डॉ. नवदीप कुमार लिखित खोजपूर्ण कृति **"क्रांतिसूर्य महर्षि दयानंद व उनके विलक्षण सहयोगी"** भी महर्षि दयानंद के स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान को समझने में सहायक है। यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि वेदों या वैदिक साहित्य में अपनी शक्ति के बल पर किसी देश को गुलाम बनाने व वहां के धन वैभव को लूटने का कहीं कोई संकेत नहीं मिलता जैसा कि विदेशियों ने भारत के साथ किया है। इसलिए वेद ही सर्वोत्तम धर्म एवं मनुष्यों का आचार शास्त्र सिद्ध होता है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश का छठा समुल्लास राजधर्म विषय को समर्पित किया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने राजधर्म, राज्य संचालन हेतु तीन-सभाओं राजार्य सभा, विद्यार्य सभा तथा धर्मार्य सभा, राजलक्षण, दण्ड व्यवस्था, राज-कर्तव्य, अष्टादशव्यसननिषेध, मन्त्री, दूतादि राज पुरूषों के लक्षण, मन्त्रियों के कार्य व कर्तव्य तथा दुर्ग निर्माण, युद्ध के प्रकार, राज्यरक्षा विधि, ग्राम के अधिकारियों का वर्णन, कर ग्रहण करने के प्रकार आदि अनेक विषयों का विस्तार से वर्णन किया है जो किसी स्वतन्त्र देश में ही होता है। **इससे यह भी भासित होता है कि उन्हें कालान्तर में देश के स्वतन्त्र होने की आशा थी और उसी निमित्त उन्होंने यह छठा समुल्लास लिखा था, अन्यथा इसका क्या उपयोग था?** देश के आजाद होने पर हमारे देश के नेताओं ने इन उपादानों का लाभ न उठा कर विदेशी संविधानों आदि की नकल ही की है और प्रायः अंग्रेजी राज्य के कानूनों आदि व्यवस्था को यथावत स्वीकार कर लिया। **वैदिक शासन व राज्य व्यवस्था से परिचित कराना भी महर्षि दयानन्द की एक बहुत बड़ी देन है।** महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ के छठे समुल्लास में वेद और मनुस्मृति आदि के उद्धरण दिये हैं। इसमें ऋग्वेद के 2, अथर्ववेद के 3, यजुर्वेद का 1, शतपथ ब्राह्मण का 1 तथा मनुस्मृति के 190 श्लोकों को उद्धृत किया है। अतः राजधर्म व देश की व्यवस्था के संचालन में मनुस्मृति एक उपयोगी ग्रन्थ रहा है और आज भी प्रासंगिक है जिसका सत्यार्थ प्रकाश में विस्तार से वर्णन कर महर्षि दयानन्द ने देश व विश्व का उपकार किया है।

महर्षि दयानन्द ने देश को सबसे पहले स्वतन्त्रता व स्वराज्य का मन्त्र दिया। उनके दो शिष्य एवं अनुयायी पं. श्यामजी कृष्ण वर्म्मा एवं महादेव गोविन्द रानाडे क्रान्ति और अंहिसात्मक आन्दोलनों के प्रणेता कहे जा सकते हैं। आजादी के आन्दोलन में सर्वाधिक सत्याग्रही व क्रान्तिकारी आर्यसमाजी व महर्षि दयानन्द के अनुयायी थे। न केवल स्वतन्त्रता आन्दोलनकारी अपितु इनका नेतृत्व करने वाले लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द, पं. रामप्रसाद, बिस्मिल और शहीद भगत सिंह आदि भी आर्यसमाजी और महर्षि दयानन्द के अनुयायी थे। अतः आजादी के आन्दोलन में सबसे अधिक योगदान यदि किसी का था तो वह महर्षि दयानन्द व उनकी संस्था आर्यसमाज का ही मानना होगा। दुःख एवं खेद की बात है कि देश के आजाद होने पर महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज के योगदान की उपेक्षा की गई और उसे भुला दिया गया। इसका कारण इन विषयों का निर्णय करने वाले लोग आर्यसमाज के प्रति पक्षपात रखने वाले व विरोधी विचारधारा वाले थे। सत्य कभी छिप नहीं सकता अतः कभी न कभी महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सर्वोपरि योगदान को देश को स्वीकार करना ही होगा। हम यह भी कहना चाहते हैं कि 15 अगस्त, 1947 को प्राप्त स्वतन्त्रता अधूरी है। जब तक सभी देशवासी वेदों के सिद्धान्तों व मान्यताओं को स्वीकार कर उनका आचरण नहीं करते, यह स्वतन्त्रता खतरे में रहेगी। अतः वेद प्रचार देश की स्वतन्त्रा के लिए परमावश्यक कार्य है। सत्य, तर्क, ज्ञान व मानव हित की दृष्टि से यही राजधर्म होना चाहिये।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**